विक्रेता
भारती-भण्डार
लीडर प्रेस,
इलाहाबाद

प्रथम संस्करण
सं०, '९८,
मू० १)

मुद्रक—
कृष्णाराम मेहता
लीडर प्रेस, इलाहाबाद

“ अ ” और “ उ ” को

भव के विशाल वक्ष पर, ऊर्मियों की भाँति, हम न जाने कहां से आते-
आते मिल जाते हैं; कुछ क्षण साथ-साथ बहते हैं; फिर
अलग हो जाते हैं—न जाने फिर कभी मिलने के
लिये या फिर कभी न मिलने के लिये !



कवि

वक्तव्य

" प्रात-प्रदीप " के बाद यह मेरा दूसरा संग्रह है।

इसके सम्बन्ध में कुछ कहने से पहले मैं प्रात-प्रदीप की सफलता अथवा असफलता तथा काव्य-सम्बन्धी अपने दृष्टि-कोण के बारे में दो शब्द कहूँगा।

× × ×

सर्दियों के दिन थे, हिन्दी समाज लाहौर के एक भरे अधिवेशन में अपनी एक कविता की अप्रत्याशित सफलता से मैं खुश था, मित्रों में उसी के सम्बंध में चर्चा हो रही थी, जब एक साहिब मुझ पर बरस पड़े :

" आप क्यों ऐसी हृदय को डुलाने वाली कविताएँ लिखते हैं ? इस व्यथा के वितरण से दुनिया का क्या बनता है ? आपकी पत्नी मर गयी है, दूसरे की तो नहीं'। अपनी कवित्व-शक्ति का अनुचित प्रयोग करने के बदले उसे श्रमिकों अथवा कृषकों की सेवा में आप क्यों नहीं लगाते ? "

कुछ ऐसी ही, शायद इस से भी कुछ तीखी और कटु डाँट उन्होंने मुझे पिला दी।

मैंने उन्हें समझाया कि जैसी कविताएँ आप कहते हैं, वैसी शायद मैं नहीं लिख सकता।

उसी क्रोध-मिश्रित डाँट के स्वर में वे बोले कि तुम लिख तो सकते हो, पर लिखते नहीं। तुम्हें अफ़ीम का चसका पड़ गया है।

—और राष्ट्रीय, साम्यवादी तथा कृषकों और श्रमिकों के दुखों का प्रदर्शन करने वाली कविताएँ लिखने की उपयोगिता तथा औचित्य वे बताने लगे।

उनके उस लैक्चर के दौरान में (जो वे उसी स्वर में अनवरत, मुझे एवं दूसरे मित्रों को पिला रहे थे) मैं खिसियानी सी आवाज़ में बराबर कहता रहा था कि मैं किसानों अथवा श्रमिकों के साथ नहीं रहा, मुझे उनके दुखों तथा कष्टों का यथार्थ एवं फर्स्ट-हैंड ज्ञान नहीं, और यदि मैं अपने ही वर्ग अथवा मानव होने के नाते, केवल अपने ही सुख दुख, प्रेम विरह को अभिव्यक्त करता हूँ तो क्या पाप करता हूँ ? और यदि मैं वास्तविक अनुभूति के बिना लिखूँगा तो कविता में वह असर कैसे आ सकेगा जो पाठक को कवि के साथ महसूस करने पर विवश करता है..................किन्तु मेरी बात उनकी वाणी की रुद्रता में डूब गई और मैं खिन्न-मन सा वापस आ गया।

वह कविता थी 'विदा'।

संवेदना के एक पत्र के उत्तर में पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदी को मैंने वह कविता भेज दी।

"कविता को पढ़ कर मेरे आँसू आगए" उन्होंने लिखा। और कविता जनवरी १९३७ के 'विशाल भारत' में छाप दी। उस कविता को पढ़ कर श्रद्धेय बालकृष्ण जी शर्मा 'नवीन' ने एक पत्र उनको लिखा :

"जनवरी के विशाल भारत में श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' की कविता पढ़ी। आत्मा को सुख मिला, टीस मिली, हसरत मिली, राहत मिली।

क्या आप उपेन्द्रनाथ जी तक मेरी सजल-नयना कृतज्ञता पहुँचाने का अनुग्रह करेंगे। मैं तो कविता पढ़ कर गद्‌गद हो गया

'जड़ता गति हो कर वह निकली'—

क्या बात कही है। मेरे सहस्रशः साधुवाद श्री उपेन्द्रनाथ को"

× × ×

और मैं अपनी भावनाओं को दयानतदारी के साथ व्यक्त करता गया। तब मैं कविता, महज़ कविता की luxury (ऐयाशी) के लिये न करता था, वल्कि मैं कविता करता था, क्योंकि मैं ऐसा करने के लिये विवश था। और इस लिये आलोचनाओं—प्रायः कटु आलोचनाओं और व्यंग्य के बावजूद मैं लिखता गया।

और १९३८ में मैंने अपनी कविताओं का संग्रह 'प्रात-प्रदीप' के नाम से छपवाया।

उसकी भूमिका में मैंने अपनी ओर से कुछ नहीं लिखा। मेरे मित्र श्री धर्म-प्रकाश आनन्द की ओर से एक विस्तृत आलोचना उस पर थी, जिसमें उन्होंने इस बात का ज़िक्र कर दिया कि वे कविताएँ मैंने अपनी स्वर्गीया पत्नी के वियोग में लिखी थीं (और यही इक़बाल (Confession) शायद प्रात-प्रदीप की ट्रेजिडी हुआ।)

बहुत से आलोचकों ने शायद उसे इसीलिये नहीं पढ़ा कि वह एक व्यक्ति का व्यक्तिगत क्रन्दन था, कुछ ने उसे कोरी भावुकता समझ कर पढ़ने का कष्ट नहीं किया, और जिन्होंने उसे पढ़ा भी उन्होंने उसकी व्यापक अपील की ओर ध्यान नहीं दिया और इस तरह मेरे हृदय की गहराई से निकली हुई वे कविताएँ, जिस ध्यान की अधिकारिणी थीं, वह हिन्दी के आलोचकों ने उन्हें नहीं दिया।

मुझे इसका अफ़सोस नहीं, क्योंकि जहाँ जहाँ प्रात-प्रदीप पहुँची, वहाँ से जो प्रशंसा उसके सम्बन्ध में मुझे मिली, उसने मेरा साहस ही बढ़ाया। अकृतज्ञता होगी यदि मैं उनमें से कुछ पत्रों का संक्षिप्ततया ज़िक्र न करूँ जिनमें अभिव्यक्त नैसर्गिक उद्‌गारों का मेरे निकट अन्य समालोचनाओं से अधिक मूल्य तथा मान है।

" तुम्हारी कविताओं को पढ़ कर मुझे अपना बाईस वर्ष पहले का दुख याद हो आया।"

माखनलाल चतुर्वेदी

" करुण रस से भरी आपकी कविताओं को पढ़ गया। मन पर एक विषाद सा छा गया। आशा है इन वर्षों में समय ने आपको अपने दुख की स्मृति द्वारा दूसरों के दुखों में तीव्र रूप से हिस्सा लेने की शक्ति प्रदान की होगी।"

किशोरलाल० घ० मश्रुवाला।

" प्रात-प्रदीप की दो तीन वार आवृत्ति हो चुकी है। पुस्तक की एक एक कविता हृदयग्राही है। ख़ास कर 'विदा' और 'सूनी-घड़ियों में' पढ़कर तो मुझे रोना आ गया। बनावटी प्रशंसा नहीं, वास्तव में ही पुस्तक अत्यन्त सुन्दर है। यह दूसरी बात है कि पुस्तक की लगभग सभी कविताएँ दुखांत हैं अतः मेरे हृदय के अनुकूल बन पड़ी हैं। कुछ भी हो, मुझे आज तक किसी अन्य कविता की पुस्तक ने इतना आकर्षित नहीं किया।"

कमला देवी चौधरी

" विशाल भारत के अंकों में 'विदा', 'सूनी घड़ियों में' 'तस्वीर' आदि कितनी ही रुला देने वाली कविताएँ पढ़ कर सोचा करती थी—कौन है ऐसा दिल रखनेवाला कवि ?........

प्रात-प्रदीप पर बधाई लिखने के बदले जी होता है, समवेदना के चार आँसू भेज दूं।"

सत्यवती मल्लिक

" प्रात-प्रदीप की कविताओं में ऐसी अनुभूति तथा प्राण के कम्पन मिले हुए हैं कि मन को छुए विना नहीं रह जाते। और यही है तुम्हारी विशेषता।

कविताएँ जल सी स्वच्छ, सरल तथा करुण रस-युक्त हैं। कविता की लाइनों पर मालूम होता है, जैसे कवि का प्राण जागकर बैठ गया है।—"

उषादेवी मित्रा

"मैं क्रिटिक तो नहीं हूँ, कवियों के प्रति मेरे मन में जो सहज श्रद्धा है, उसे तुमने बढ़ाया ही है, घटाया नहीं। तुम हिन्दी पदों में एक तरह की सादगी और तीव्रता ले आए हो, जो किसी न किसी दिन तुम्हारे व्यक्तित्व की बढ़ती हुई विषमता तथा विचारोग्रता पर अवलम्बित होकर तुम्हारी कविता को और भी समृद्ध कर देगी।"

बलराज साहनी

"Your poems seem to contain the very quintessence of Romantic Lyricism. A delicious sadness —almost Shelleyan—emanates from most of your poems. The personal sorrow merges imperceptibly into the universal tragedy and the poet's grief becomes the reader's. For sheer spontaneity, verbal music, pathetic wistfulness, romantic sensibility and tragic poignancy your poems have few equals."

(Prof.) K. L. Kapur.

और 'प्रात-प्रदीप' की कविताएँ कुछ लोगों को मेरे इतना समीप ले आई हैं कि उनकी संगति के क्षण जीवन की सुखद विभूतियों में से हैं, और उनका विछोह अपने में एक मीठा दर्द रखता है।

× × ×

लेकिन मुझे उन आलोचकों का ज़िक्र करना है जो उपरोक्त लोगों से सहमत नहीं।

नौ.

एक आलोचक ने इस बात पर हैरानी प्रकट की कि 'अश्क' सा मस्त, कहकहे लगाने वाला व्यक्ति इतनी करुण कविताएँ लिखे।

एक दूसरे ने कहा कि कविताएँ तो अच्छी हैं पर ये हिन्दी के अमुक अमुक कवि की कृतियों तक नहीं पहुँचतीं।

एक तीसरे ने मेरे मुँह पर कहा—यह सब कोरी भावुकता है, प्रेम, प्रेम, प्रेम, क्या इसके सिवा और कोई व्यापार दुनिया में नहीं ?

एक चौथे ने (जो बेहद ऊंचाई से बोलते प्रतीत होते थे) उनको एकदम rubbish भी बताया।

इन चार तरह के आलोचकों को कविता की appreciation (मूल्यांकन) के बारे में कुछ भ्रान्तियाँ हैं। मैं आज अपना दूसरा संग्रह हिन्दी पाठकों के सम्मुख रखने जा रहा हूँ, इसलिये काव्य तथा इससे सम्बंध रखने वाली कुछ धारणाओं तथा समस्याओं के बारे में अपना दृष्टिकोण उनके सामने रखने की धृष्टता करूँगा।

सुख-दुख

एक साधारणतया हँसने वाले व्यक्ति के किसी समय रो पड़ने पर हैरानी प्रकट करना, इस बात पर आश्चर्यान्वित होना है कि उसके पहलू में दिल भी है।

"ऐं जीवन में दुख भी है"—यह कह कर जो हैरानी प्रकट कर सकता है, वही किसी कवि के आँसुओं पर हैरान हो सकता है।

लेकिन कहा जा सकता है—माना जीवन में दुख है और कदाचित ज्यादह दुख है, किन्तु क्या आवश्यकता है कि सुख के स्थान पर दुख का प्रचार तथा प्रसार किया जाए ? और माना मानव के पहलू में दिल है और दिल में दर्द, किन्तु क्यों न उस दर्द को दबा कर रखा जाए ?—

Laugh and the world laughs with you.

इला व्हीलर विलकाक्स की यह कविता भेजते हुए स्व० ब्रजमोहन वर्मा (स० विशाल भारत) ने मुझे यही सुझाया था।

“ रहा जीवन में दुख का सवाल,” उन्होंने लिखा, “ इस विषय में मेरा दृष्टिकोण आपसे कुछ भिन्न है। निस्सन्देह हमारे चारों ओर अत्यधिक दुख है और हमारे कवियों की कविताओं में उसका reflection भी स्वाभाविक है, किन्तु मेरे विचार में कविता में दुख का प्रतिबिम्ब रहे और ज़रूर रहे, किन्तु साथ ही उसमें उस दुख पर विजय पाने की चेष्टा भी होनी चाहिए। यदि दुख का वर्णन ऐसा है कि कवि और पाठक दोनों ही उसमें डूबकर रह जाएँ—सीधे तलैटी में जाकर ही रुकें—तो वह कविता मुज़िर ही है। कवि को वातावरण के प्रतिबिम्ब के अतिरिक्त कुछ और भी देना चाहिए। वह युग का सन्देशवाहक है। उसकी वाणी में पाठक के लिये कुछ message भी होना चाहिए। कवि फ़ोटोग्राफ़र नहीं आर्टिस्ट है। फ़ोटोग्राफ़र चीज़ का ज्यों का त्यों प्रतिबिम्ब दे देगा, किन्तु आर्टिस्ट उसमें सजीवता ला देगा; प्राण-प्रतिष्ठा कर देगा। नया मार्ग दिखाएगा। ”

इसके उत्तर में मैंने उनसे पूछा था कि जीवन में ऐसे क्षण नहीं आते क्या, जब मनुष्य को कुछ सूझ नहीं पड़ता; जब एक गहन अंधकार उसे लीलता हुआ सा दिखाई देता है। उस समय यदि वह मनुष्य कवि भी है, और कविता में अपने हृदय का भार उँडेल कर हल्का होना चाहता है तो क्या उसके हृदय की तीव्रतम अनुभूति से निकली हुई कविता केवल इसलिये उपेक्षणीय, गर्हणीय होनी चाहिए कि वह कोई संदेश नहीं रखती। जब स्वयं उसे कोई मार्ग नहीं सूझ पड़ता, तब यदि वह लोगों को मार्ग सुझाता है, तो क्या वह अपनी भावनाओं तथा अनुभवों के प्रति दयानतदार है? और क्या उसकी वह कविता adulterated (मिलावट के) पेय की भाँति नहीं?

तब उन्होंने मुझे फिर एक पत्र लिखा :

" आपका शेर

इंसान समझता है कि तदबीर है सब कुछ
मजबूरियाँ कहती हैं कि तक़दीर भी कुछ है।

बहुत सुन्दर है। धर्म में विश्वास न रखते हुए और Superstitions से कोसों दूर रहते हुए भी मैं Fatalist हूँ और आपके शेर की सत्यता को पूरी तरह मानता हूँ। आप उन्हें मजबूरियां कहें, कर्म-फल कहें, जो चाहें कहें, किन्तु जीवन में ऐसे मौके आते रहते हैं, जब कोई तदबीर कारगर नहीं होती।............

और इसमें भी सन्देह नहीं और मैं अनुभव भी करता हूँ कि आपके शब्दों में—'सूनी घड़ियों में' दुख का बाँध टूट पड़ता है, हँसी और imposed प्रसन्नता उसे दबाने में असमर्थ होती है।"

फिर भी जीवन व्यतीत करने के लिये हँस कर गुज़ारने की पालिसी किसी क़दर बोझ को हल्का कर देती है।"

और उन्होंने इला ह्वीलर विलकाक्स की वह कविता भेजी।

× × ×

किन्तु पालिसी और चीज़ है और कविता और—पालिसी का सम्बन्ध मस्तिष्क से, बुद्धि से है, कविता का हृदय से, अनुभूति से। कविता दिमाग़ से उस हद तक ही काम लेती है जहाँ तक छंद, अलंकार शब्द-चयन अथवा बौद्धिक भावनाओं के व्यक्तीकरण का सम्बन्ध है, किन्तु जब अनुभूति का प्रश्न आता है तो वह महज़ दिल की चीज़ होकर रह जाती है। और यदि उसका दिल कोई संदेश नहीं देता, पर कवि अपने पाठकों को महज़ message देने के ख़याल से अपने परिष्कृत मस्तिष्क की सहायता से कोई संदेश दे देता है तो वह संदेश न नैसर्गिक हो सकता है, न दयानतदार और न प्रभावशाली।

किसी संदेश के बिना दुख की कविता—व्यक्तिगत दुख की कविता करना कहाँ तक उचित एवं उपयोगी है ? यह मैं नहीं जानता। किन्तु इतना मैं जानता हूँ, कि जीवन में ऐसे क्षण भी आते हैं, जब हँसी के चुटकले, राजनीतिक अथवा सामाजिक लेख, अथवा समस्याएँ, यहाँ तक कि समस्त सांसारिक व्यापार मन को नहीं रुचते और करुण रस में विभोर कोई कविता अथवा कहानी (जिसमें हमारे दुख का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है) मन को हल्का कर देती है।

दिल ही तो है न संगो ख़िश्त दर्द से भर न आए क्यों ?
रोएँगे हम हज़ार बार कोई हमें सताए क्यों ?

ग़ालिब की इन व्यक्तिगत दुख से भरी हुई अत्यधिक करुण पंक्तियों ने कई बार मुझे सान्त्वना प्रदान की है। कई बार उन कवियों की रचनाएँ पढ़ने में मुझे रस मिला है जिन्होंने प्रकृति-परी के सौंदर्य से सुख पाकर उल्लास से विभोर कविताएँ लिखी हैं, किन्तु जीवन में ऐसे क्षण भी आए हैं जब व्यक्तिगत दुख से परिपूर्ण रचनाओं के अतिरिक्त कुछ भी पढ़ने को जी नहीं चाहा—शायद इसलिये कि कवि चाहे अपनी ओर से अपने व्यक्तिगत दुख की कविता लिखता है, पर वह उसी प्रकार के दुख से दुखी लोगों को सान्त्वना प्रदान करती है और वे काल्पनिक सहानुभूति द्वारा उससे रस का आनन्द ले सकते हैं। और यहीं वे विद्वान आलोचक ग़लती पर हैं, जो किसी विशेष कवि की, मन की विशेष स्थिति में कही गई, कविताओं की तुलना किसी दूसरे कवि की, मन की विशेष अवस्था में कही गई, कविताओं से करते हैं। और तो और एक ही कवि की एक अच्छी कविता का उसकी दूसरी अच्छी कविता से मुकाबला नहीं किया जा सकता। किसी कवि के मूल्यांकन के हेतु अपनी तथा उसकी मानसिक अवस्थाओं का जाइज़ा लेना आलोचक तथा पाठक के निकट इसी लिये ज़रूरी है।

रहा दुख के वितरण का प्रश्न ? तो जैसा कि मैंने अभी कहा हमारे आधार-भूत दुख एक से हैं और उन दुखों का व्यक्तीकरण करने वाली कविताएँ वैसे ही दुखों में ग्रसित लोगों को सान्त्वना प्रदान करती हैं।

और फिर ईथल मैनिन ने लिखा है :

"There is a greater need too, to write of one's sufferings for suffering is a lonely business and we all have need for a confessional."

और

"Why it should be regarded as less decent to write of one's pains, I have never been able to understand. Human emotions are surely more interesting and more important. What the world says is unimportant. The important thing is the preservation to one self of one's own integrity."

कोरी भावुकता

हृदय की पवित्रतम अनुभूतियों को कोरी भावुकता का नाम देकर उनका उपहास करना आज की आम बात हो गई है और इसीलिए प्रेम की भावनाओं को प्रदर्शित करने वाली उत्तम रचनाओं को भी कथित प्रगतिवादी रचनाओं के मुकाबले में ठुकरा दिया जाता है और थर्ड रेट प्रगतिवादी कवि अथवा आलोचक अच्छी से अच्छी कविता को 'कोरी भावुकता' कह कर उसका मज़ाक उड़ा सकता है। मज़दूर और कृषक, देश के दैन्य तथा दारिद्र्य, राष्ट्र के उत्थान तथा पतन के गीत गाए जाएँ, और ज़रूर गाए जाएँ, किन्तु यदि कभी मानव की आधारभूत भावनाओं को व्यक्त करती हुई कविता की सरिता बह

निकले तो उस पर बांध क्यों लगा दिए जाएँ ? मानव क्यों अपनी इन भावनाओं से शर्माएँ ?

इस विषय पर मैं अपनी ओर से कुछ न कह कर ईथल मैनिन के ही कुछ विचार दूँगा।

" To have loved is to have lived and to have lived even for a little while is more than most people realize in this world, in which tragically few people ever know what it is to live in the full sense of the term. "

" प्रेम, प्रेम, प्रेम आख़िर और कोई व्यापार दुनिया में नहीं रहा" ? ऐसा कह कर जो अपने cynical mood में अच्छी से अच्छी कविता को परे हटा देते हैं उनके लिये ईथल मैनिन ने लिखा है :

" There is a great deal of fox-and-the-sour-grapes-business in the scoffing at the importance of Love in life. When for instance " mother of family " writes indignantly to me, pointing out "There are other things in life besides this love business" I know at once that she has been cheated by life just as I know that the people who are cynical about love are the people who have wanted it desperately and yet never known it or have been bitterly hurt by it —Though I am not sure that if one has really known love, even when one has lost it either by death or otherwise, that one can be bitter about it. Sorrowful certainly, but not bitter, for it is something to

have smelt the mystic rose and left the thorny rods."

और यह बात न भूल जाना चाहिए कि ईथल मैनिन इस युग की संसार-प्रसिद्ध प्रगतिशील कलाकार हैं।

प्रगतिशीलता

प्रगतिवाद क्या है और वह प्रगतिशील साहित्य कैसा है जो इस शब्द की परिभाषा पर पूरा उतरता है—चूँकि इसकी कोई सीमा निर्धारित नहीं, इसलिये बहुत सा ऐसा साहित्य जो प्रगतिशील की अपेक्षा अप्रगतिशील अधिक है, इसी नाम से पाठकों पर लादा जा रहा है।

उर्दू में भी और हिंदी में भी, अपने आपको प्रगतिशील लेखक समझने वाले (और लेखक में कवि भी शामिल हैं) साधारणतया प्रगति के दो ही अर्थ निकालते हैं—एक तो यह कि भिखमंगों और बेकारों की दयनीय दशा का ख़ाक़ा खींचा जाए और दूसरे सेक्स सम्बन्धी विषयों तथा अश्लीलता की प्रचलित सीमाओं को तोड़-मरोड़ कर रख दिया जाए।

इस प्रगतिवाद का पिछले दिनों कुछ ऐसा प्रचार हुआ है कि वे कवि भी जो अपनी अनुभूतियों के अनुसार सुन्दर कविता कर रहे थे, किसान और मज़दूर की मुसीबतों का रोना रो रहे हैं अथवा समाज की हानिकारक प्रथाओं के साथ लाभदायक सीमाओं को भी लाँघ जाना प्रगति मानने लगे हैं। ये दोनों बातें अपने में बुरी नहीं। समाज के गलित अंगों का चित्रण भी अत्यावश्यक है और समाज की कुत्सित दशा का दिग्दर्शन भी। मैं यहाँ उन लोगों की बात नहीं करता जो कृषक तथा श्रमिक के लिये महसूस करते हैं और उसकी दुखद अवस्था का चित्रण करने से नहीं रह सकते और न ही मैं उन लोगों की बात

करता हूँ, जो समाज के किसी अंग को गलित होते हुए देखते हैं और बिना इस बात की चिन्ता किए कि वे अपनी बात कहने में संयम से काम लेते हैं या नहीं, स्पष्टता, क्रूरता और बेरहमी से उसका चित्रण कर देते हैं। मैं यहाँ उन साहित्यिकों की बात करता हूँ जो महसूस कुछ करते हैं और लिखते कुछ हैं—कविता जिनके लिये एक तरह की दिमाग़ी ऐयाशी अथवा ख्याति का साधन है। या फिर मैं उनकी बात करता हूँ जिनका उद्देश्य समाज की कुत्सितता का चित्रण करके उसे दूर करना नहीं, वरन् उसे मनोरंजक बना कर पाठकों की निम्न-भावनाओं को उद्दीपित करने की सामग्री जुटाना है। जब ये दोनों प्रकार के लोग गर्व के साथ अपने आपको प्रगतिशील कहते हुए दूसरों का उपहास करते हैं, तब उन पर हँसी भी आती है और दया भी।—इनमें से कई ऐसे हैं जो इस नयी धारा का आश्रय लेकर ख्याति की नदी को पार कर लेना चाहते हैं और अधिकांश ऐसे हैं जो बिना उस अनुभूति के जो किसी व्यक्ति को कवि बनाती है और बिना उस अध्यवसाय के जो कवि को सुकवि बनाता है, रोटी का राग, बेकारी का राग, किसान का राग, मज़दूर का राग अलापने लगे हैं। इनमें से अधिकांश मज़े से रोटी खाते हैं और बेकारी की वास्तविक भयानकता से भी अधिकांश अनभिज्ञ हैं और सिवाय कविता तथा कहानी के मज़दूर तथा किसान की बात भी वे स्वप्न में नहीं सोचते।—प्रतिभा तथा भाषा के बल पर बिना अनुभूति के जो पुराने कवि भी अपनी रविश को छोड़ कर बरबस प्रगतिशील बने जा रहे हैं उनकी चीज़ें ऊँचे दर्जे के साहित्यिकों के मनन तथा मनोरंजन की वस्तु तो हो सकती हैं, किन्तु उनमें वह बात नहीं आ सकती जो सीधी मर्म पर जाकर चोट करे और जिसे पढ़ कर पाठक उन ग़रीबों के लिये कुछ कर ही गुज़रने पर तैयार हो जाएँ!

भारत में, मैं मानता हूँ, इस समय एक बड़ी समस्या किसानों तथा श्रमिकों की है, किन्तु दूसरी कोई समस्या ही नहीं यह मैं नहीं

मानता। हो सकता है कि नगर का निवासी नागरिकों की समस्याओं को देहातियों की समस्याओं से अधिक महसूस करता हो और देहात में रहने वाला देहात की समस्याओं को नागरिकों की समस्याओं से अधिक ! वास्तव में जो जहाँ है उसे अपने तौर पर अपनी अनुभूतियों के अनुसार लिखने देना चाहिए। प्रतिबंध उस पर न लगाना चाहिए। और यदि वह जागरूक है, अपनी भावनाओं के प्रति दयानतदार है किसी code अथवा वाद की उसे परवाह नहीं तो जो भी वह लिखेगा प्रगतिशील ही होगा।

प्रगतिशील साहित्य मेरे विचार में केवल वही साहित्य नहीं जिसमें किसान, मज़दूर, वेकार अथवा विपन्न की दशा का चित्रण हो, वरन् जो भी नवीन है, पुरानी लीक से जो भी परे होकर चलता है, अपनी आस-पास की दशा से जो भी जागरूक है, समय की कुरीतियों पर जो भी तीव्र प्रहार करता है और अपने आपको समझने के लिये जो भी हमारी सहायता करता है, वही प्रगतिशील है।

प्रस्तुत संग्रह

प्रस्तुत संग्रह की कविताएँ प्रगतिशील हैं अथवा अप्रगतिशील, यह मैं नहीं जानता। वे प्रगतिवाद की किसी प्रचलित परिभाषा पर पूरी उतरें इस विचार से मैंने उन्हें नहीं लिखा। गत तीन वर्षों में ऐसे क्षणों की अभिव्यक्ति मात्र वे हैं, जब अपने अत्यधिक व्यस्त जीवन में भी कविता ही मेरी सहायक एवं संगिनी रही है। और चूंकि मैं दूर की कौड़ी लाने में विश्वास नहीं रखता, इसलिये इर्दगिर्द के हालात का जो प्रभाव मेरे दिल पर पड़ता है, उसे मैं कविता में व्यक्त कर देता हूँ। आज डेढ़ वर्ष से मैं ऐसी जगह रहता हूँ जो रोमांस (Romance) और यथार्थता की सीमा पर है। इसलिये शायद प्रस्तुत संग्रह की कविताओं में इन दोनों का संमिश्रण पाठकों को मिले।

किन्तु मेरे इस वक्तव्य का यह अर्थ हरगिज़ न लिया जाए कि जो लोग राष्ट्रीय कविता करते हैं, मज़दूरों अथवा किसानों पर लिखते हैं, उन्हें मैं उपेक्षा की दृष्टि से देखता हूँ अथवा मैं सदैव इन्हीं विषयों पर कविता करूँगा। मेरे इस संग्रह में भी सहृदय पाठकों को दूसरा रंग धीरे-धीरे उदित होता दिखाई देगा और हो सकता है कल मैं और भी आगे देहात में चला जाऊँ और मेरी कविताओं में देहात की यथार्थ दशा का चित्रण हो (यद्यपि वह चित्रण पंजाब के देहात का होगा और उसकी अवस्था यू० पी० के देहात से कुछ भिन्न है।) यहाँ तो मैं सिर्फ़ इतना कहना चाहता हूँ कि जो लोग अपनी आधारभूत भावनाओं का गला दबा कर मात्र कृत्रिम सहानुभूति द्वारा युग के संदेश-वाहक बनने के लिये मज़दूरों तथा किसानों की कविताएँ करते हैं, वे अपने तथा अपने पाठकों के साथ अन्याय करते हैं।

हडसन ने एक स्थान पर लिखा है :

" Literature is an interpretation of life as life shapes itself in the mind of the *interpretor.* "

और यदि वह interpretor (विवेचक अथवा व्याख्याता) कवि है और जीवन के सम्बंध में अपने वातावरण के अनुसार अपने दृष्टिकोण से लिखता है तो उसे बाध्य नहीं किया जा सकता कि वह अमुक विषय पर अथवा अमुक नीति से लिखे। अरुणोदय ने कब किसी के प्रतिबंध को स्वीकार किया है ? सागर की ऊर्मियों तथा समीर के झकोरों ने कब किसी नियम को माना है ? और सब से बढ़ कर जीवन ही कब किसी Code को मानकर चलता है ? फिर जीवन की अभिव्यक्ति करने वाले कवि से ही यह आशा क्यों रखी जाए कि वह एक तरह के जीवन अथवा एक तरह की भावनाओं का चित्रण करे ?

प्रीतनगर
मार्च १९४१

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'



ऊर्मियां

क्रम

पहला भाग		पृष्ठ
१	ऊँचे तरु की डाली पर	२७
२	था एक दिवस उर मेरा	२८
३	दर्पण अंकित कर पाए	२९
४	जलने को जलता रहता	३०
५	यह प्रेम कुसुम सखि मेरे	३१
६	है प्यार मुझे तुमसे सखि	३२
७	हल्की हल्की बेचैनी	३३
८	विद्युत में जलधर हँसता	३४
९	अनुरोध तुम्हारा है सखि	३५
१०	जीवन पथ के सब कांटे	३६
११	उर बह निकला आँसू बन	३७
१२	क्यों इन आँखों के पीछे	३८
१३	आभा है इन्द्र धनुष की	३९
१४	अरमानों की मिट्टी में	४०
१५	जब पश्चिम में पिक बोला	४१
१६	हम मिले	४३
१७	लो मधुरे मेरा धन्यवाद—!	४६
१८	मधुप ने की जाकर गुंजार	४८
१९	मेरे उर का सखि मूक प्यार	५१

पृष्ठ

२० साथी आज मुझे मत छेड़ो ५२
२१ मित्र आशा के सहारे ५४
२२ आज मेरे आँसुओं में कौन सी स्मृति मुस्कराई ? ... ५५
२३ किस स्नेह परस ने छेड़ दिया ? ५६

दूसरा भाग

१ जिस राही से आशा थी ६१
२ क्यों मानव की लज्जा से ६२
३ मिट जाती हैं स्रष्टा की ६३
४ आशाएँ जब धरती की ६४
५ युग युग से सुनता हूँ मैं ६५
६ आ इस जगती के ऊपर, ... ६६
७ पा लेना है मंजिल ज्यों ६७
८ पत्थर सा मित्र हुआ है ६८
९ चुप खड़े देखते हो क्या ६९
१० खंडहर में छिपे हुए हैं ७०
११ वह दूर नदी के तट पर ७१
१२ भीगी है रात अँधेरी ७२
१३ शीत काल की प्रातः ७३
१४ तुम कहते हो आज दुखी मैं ! ७५
१५ रात चाँदनी ७९

तीसरा भाग

१ ओ नीम ! ८३

It is something to have hungered once as those
Must hunger who have ate the bread of gods

G. K. CHESTERTON

(१)

ऊँचे तरु की डाली पर,
यह जान, घनी है छाया।
भोले खग ने चुन चुन कर,
कुछ तिनके, नीड़ बनाया।

हँस उठी नियति बन बिजली,
लुट गया विटप का यौवन।
जब राख हो गई छाया,
तब कहाँ नीड़ के दो तृण ?

अब जली हुई शाखों में,
आकुल, आतुर बेचारा !
फड़ फड़ करता फिरता है,
पागल खग मारा मारा !



(२)

था एक दिवस उर मेरा,
चिर चिर का सूखा सागर।
अपने अभाव का मारा,
तकता रहता था अम्बर।

तूफ़ान न देखे इसने,
इसने हलचलें न जानीं।
सूनेपन के आतप ने,
सोखा सब इसका पानी।

फिर जल-धर बन तुम आईं,
यह उमड़ा तोड़ किनारे!
तूफ़ान उठा कर सहसा
तब झलके चाँद सितारे।



(३)

दर्पण अंकित कर पाये,
कब छवि उसकी तुम सुन्दर ?
रे, छाप अमिट है जिसकी,
मेरे इस मानस-पट पर !

तुम रूप-राशि को पाकर,
हो वंचित ही बेचारे !
निधि पा, संचित कर रखता,
वह दिल है कहाँ तुम्हारे ?

यद्यपि इस दिल ने उसको,
छवि उसकी नहीं दिखाई !
पर अपने अणु अणु में है,
उसकी तस्वीर बनाई !

❋

(४)

जलने को जलता रहता,
है दीपक प्रतिपल प्रतिक्षण!
है और शलभ का जलना,
कर ज्वाला का आलिंगन!

उन्माद कहाँ वह उस में?
जो इसमें है पागलपन!
खोकर विस्मृति के जग में,
कर देना अर्पण जीवन!

पर पागल परवाने ही
सखि, जग में पूजे जाते!
जो जलते है ज्वाला में
औरों को नहीं जलाते!

(५)

यह प्रेम कुसुम सखि मेरे
सूने उर की डाली पर,
चुप चुप, धीरे धीरे सखि
मुरझा जायेगा खिल कर !

घड़ियाँ, पल निठुर समय के,
बिखरा देंगे इसके दल !
औ' स्नेह-हीन हिम, आतप
मुरझा देंगे इसके दल !

तुम पा न सकोगी इसको,
जीवन भर गंध कुमारी !
पर मिट कर महकाएगा
यह मानस की फुलवारी !



(६)

है प्यार मुझे तुमसे सखि,
मैं कैसे यह कह पाऊँ ?
अपने मन के भावों को,
कैसे ओठों पर लाऊँ ?

मदिरा को पीकर नस नस
मद से विभोर हो जाती,
पर बेचारी जिह्वा कब
है व्यक्त उसे कर पाती ?

नस नस तड़पी पड़ती है,
पर बोल न कुछ भी पाता !
मैं निरख निरख तुमको सखि,
हूँ मूक खड़ा रह जाता !



(७)

हल्की हल्की बेचैनी,
चुप चुप, गुम सुम हो जाना।
उखड़े उखड़े फिरना पर,
कुछ दिल का भेद न पाना।

निशि की नीरव घड़ियों में,
आहों का उठ उठ आना!
चाहों का मानस-पट पर,
नित बन बन कर मिट जाना!

मैं नहीं जानता क्या है?
यह पीड़ा के स्पन्दन सा?
मेरे उजड़े मानस में?
तूफ़ानों के कम्पन सा।



(८)

विद्युत में जलधर हँसता,
जब उर उसका रोता है!
दिन हँसता रहता है सखि,
पल पल ज्यों क्षय होता है!

चमका करते हैं तारे,
नित लिये युगों की पीड़ा!
हँसते फूलों के उर में,
प्रायः रहता है कीड़ा!

क्या है, जो हँसता हूँ मैं,
मन का अवसाद भुलाए!
संसार दुखी हँसता है,
नित मन की व्यथा छिपाए!



अनुरोध तुम्हारा है सखि,
पर मूक हृदय की वीणा!
गाए तो फिर क्या गाए
दो टूक हृदय की वीणा?

तोड़े इस पर जगती ने,
हैं अत्याचार नहीं क्या?
सखि, टूट टूट कर बिखरे,
हैं इसके तार नहीं क्या?

चाहो तो स्नेह-परस से,
तुम इसको स्पन्दित कर दो!
कोयल सी कुहुक उठेगी,
इसमें नव-जीवन भर दो!

&

(१०)

जीवन पथ के सब कांटे,
मैं हर्ष सहित चुन लूंगा!
फूलों के हार हज़ारों,
मैं बीन बीन बुन लूँगा!

कांटे, इस लिये कि सुमुखि,
भय रहित चली तुम आओ!
औ फूल कि उन से आकर,
तुम अपना स्वागत पाओ!

पल में इस मरु थल को सखि,
मधुवन में परिणत कर दूँ!
तुम आशा तो दिलवाओ,
फूलों से मग को भर दूँ!



(११)

उर बह निकला आँसू बन,
हैं फूटे आज फफोले!
है कौन हमारा दर्दी,
जो उर की गांठें खोले?

जो मर्म हृदय के समझे,
आँखों की भाषा जाने?
प्रतिपल जो उठती रहती,
आँधी उसको पहचाने?

कहने को मूक हृदय ने,
सब लाख बार कह डाला!
कोई समझे तो जाने,
अन्तर की मेरे ज्वाला!



(१२)

क्यों इन आँखों के पीछे,
दुनिया दीवानी होती ?
क्यों होश भुलाते जग का,
इन दो सीपों के मोती ?

क्या छिपा हुआ है बाले,
इन दो पलकों के अन्दर ?
औ' भरे हुए हैं इन में,
कितने मस्ती के सागर ?

तुम इन अपनी आँखों से,
क्या यह सब जान सकोगी ?
मेरी आँखों से देखो !
तो कुछ पहचान सकोगी ।



(१३)

आभा है इन्द्र - धनुष की,
बादल के मिट जाने में।
फल पाते हैं निज जीवन,
फूलों के मुरझाने में।

सन्ध्या में छिपा हुआ है,
सखि, नव प्रभात का नर्तन !
म्रियमाण व्यक्ति की सिहरन,
में नव नव शिशु का कम्पन !

मेरा मिट जाना क्यों हो,
तेरे दुख का अफ़साना ?
जब मिटना है जीवन सखि,
औ' जीना है बँध जाना !



(१४)

अरमानों की मिट्टी में—
सपनों के बीज जमा कर,
देकर आँखों का पानी,
औ' उर का रक्त पिला कर,

था बड़े यत्न से मैंने,
जो सुन्दर बाग लगाया।
झंझा के दो झोंकों ने,
उसका अस्तित्व मिटाया!

अरमान कहाँ अब जिनमें,
स्वप्नों के बीज लगाऊं?
आँसू हैं कहाँ कि जिनसे,
मैं पौधे नये जमाऊँ?



जब पचम में पिक बोला,
ऋतुराज आज हैं आए !
हँस कर कलियों ने अपने,
तब मधु के कोष लुटाए ।

नीड़ों में चहक उठे तब,
अगनित खग वालों के स्वर !
उन्मत्त हुईं किन्नरियाँ,
स्वागत के गाने गा कर !

पर ओस विन्दु को जाने,
क्या बात कह गई आकर ?
सिहरी, ढुल पड़ी निमिष में
नयनों से नीर बहा कर !

× × ×

पेड़ों की शाखाओं में,
जब फूट पड़े नव-पल्लव !
गा उठे विहग ऋतु-पति का,
वन उपवन में जब उत्सव !

जब चटक उठीं यौवन पा,
पुलकित मुकुलित सब कलियाँ !
लद गईं भार से मधु के,
जब विकसित कुसमावलियाँ !

तब गिरा किनारे पथ के,
पतझड़ का पत्ता जर्जर !
हँस उठा देख सब कौतुक,
फिर दृग अपने लाया भर !

× × ×

जब अम्बर के आंगन में,
सब चिड़ियाँ उड़ीं परस्पर !
जब हिल मिल पत्ते सारे,
कर उठे अचानक मर मर !

जब गूंज उठीं कानन में,
सखि, मोरों की झंकारें !
वन वन, उपवन उपवन में,
सखि, भ्रमरों की। गुंजारें !

तब एकाकी खग कोई
तिनकों के बन्दी घर में,
कर 'टीं टीं' चुप हो बैठा,
अपने सूने पिंजर में !



हम मिले,

मुझे मालूम हुआ—
तुम तरुण नदी हो,
तूफ़ानी,
अनजानी
गिरि मालाओं में बहने वाली !
इठलाती, बलखाती, बहती
और बहाती—
पाषाणों को,
चट्टानों को,
गिरि के उर को चीर, निकलती
और मचलती
चलती हो उद्दाम !

और मैं दरिया,
चिर का चला,
थका औ' हारा,
मंथर गति से मैदानों में बहने वाला ।
मौन और गम्भीर शान्त
औ' श्रान्त !

यौवन की सब याद भुला कर,
लूट, लुटा कर,
बहता हूँ उद्भ्रान्त !

* * *

हम मिले,

मुझे मालूम हुआ—
तुम चिनगारी हो,
जीवन की सब आग लिये,
अनुराग लिये,
हो आतुर—
भुस में पड़ो,
जला दो तत्क्षण,
आग लगा दो,
धधका दो
जीवन !
है चमक दमक तुम में
पारा सी,
अंगारा सी।

और मैं राख,
युगों से शीतल ठंडी राख !
न जो गर्माय,
न गर्मी पाय,
पड़े अगर अंगारा उसमें,
तो बुझ जाए।

*   *

हम मिले,
मुझे मालूम हुआ—
तुम चिड़िया हो,

चल पंख तुम्हारे आतुर,
उड़ने को आकाशों की गहराई में !
कल कंठ तुम्हारा वेकल,
गाने को जीवन के मादक गाने !
अनजाने,
मंडल में जाने को
हृदय तुम्हारा विह्वल !

और मैं खग हूँ,
कि जिसके बाल,
कि जिसके पंख,
समय ने तोड़ दिये ;
झकझोर दिये ;
जो वेबस
औ' असहाय !
कहाँ उड़ पाय ?
भला क्या गाय ?

हम मिले

देवि मैं पूछ रहा हूँ तुमसे—
मुझे बहाओगी क्या ?
मुझे जिलाओगी क्या ?
साथ उड़ाओगी क्या ?



लो मधुरे मेरा धन्यवाद !

उन चार क्षणों के लिये देवि,
जो संग तुम्हारे बीत गये।
उन चार क्षणों के लिये कि जो,
सुख देकर आशातीत गए।

जिन चार क्षणों में पाया था,
मेरे इस जीवन ने जीवन !
जिन चार क्षणों में नाच उठा,
मुखरित, मेरा एकाकीपन !

जिन चार क्षणों में सब दीपक,
मेरी आशा के जाग उठे।
चिर असफलता की गोदी में,
चिर सोए मेरे भाग उठे !

जिन चार क्षणों में सोची थी,
इस खग ने नीड़ बनाने की !
अपनी इन उजड़ी घड़ियों के,
फिर एक बार बस जाने की !

जिन चार क्षणों में पाया था,
सखि, प्यार सभी इस जीवन का !
जिन चार क्षणों में जान गया,
मैं सार सभी इस जीवन का !

× × ×

लेकिन मैं भूला उस सुख में,
निज दीन दशा की बात नहीं !
दिन के उज्ज्वल प्रकाश में सखि,
भूला मैं लेकिन रात नहीं !

× × ×

सखि, जीवन में ऐसे पल तो,
पक्षी बन कर ही आते हैं !
फिर पता नहीं देते कुछ भी,
जब एक बार उड़ जाते हैं !

ध्वनि उनकी सुनता रहता है,
मन अपने उड़ते वर्षों में !
ऊँचे औ' नीचे मार्गों पर,
पतनों में औ' उत्कर्षों में !

तुम सुख की घड़ियों को पाकर,
सखि, उनमें ही खो जाओगी !
अनजानेपन में सुख देकर,
फिर अनजानी हो जाओगी !

इन चार क्षणों की सुख-स्मृति पर,
यह दीन सँजोये घूमेगा !
दुख की घड़ियों के शूलों में,
ये फूल पिरोये घूमेगा !

जिन चार क्षणों में मुस्काया,
सखि मेरा चिर-उन्मन-विषाद
लो मधुरे मेरा धन्यवाद !



लो मधुरे मेरा धन्यवाद ?

उन चार क्षणों के लिये देवि,
जो संग तुम्हारे बीत गये।
उन चार क्षणों के लिये कि जो,
सुख देकर आशातीत गए।

जिन चार क्षणों में पाया था,
मेरे इस जीवन ने जीवन!
जिन चार क्षणों में नाच उठा,
मुखरित, मेरा एकाकीपन!

जिन चार क्षणों में सब दीपक,
मेरी आशा के जाग उठे।
चिर असफलता की गोदी में,
चिर सोए मेरे भाग उठे!

जिन चार क्षणों में सोची थी,
इस खग ने नीड़ बनाने की!
अपनी इन उजड़ी घड़ियों के,
फिर एक बार बस जाने की!

जिन चार क्षणों में पाया था,
सखि, प्यार सभी इस जीवन का!
जिन चार क्षणों में जान गया,
मैं सार सभी इस जीवन का!

× × ×

छियालीस

कहा तारक-तन्वी ने मौन

इशारों में, जब आई रात,
'सुनो तारागण मेरी बात—

हमारे दीपक स्नेह-विहीन,
ज्योति, माना, उनकी है क्षीण,

हृदय का स्नेह लुटा दो आज!
करो स्वागत के सारे साज!

चन्द्र के रथ की है आवाज़,
जगत को सोने में कब लाज?

करेगा शशि का स्वागत कौन?'
कहा तारक-तन्वी ने मौन
इशारों में, जब आई रात!

* * *

नवल, चिड़ियों ने गाकर गान,

नयी तानों के तान वितान,
उगा जब नभ में स्वर्ण-विहान!
हृदय का सारा सुरस बखेर,
लगा कर स्वर-पुष्पों के ढेर,
उन्हें ध्वनि के तागों में बीन,
बना मालाएँ नयी - नवीन,

किया अरुणोदय का सम्मान!
नवल, चिड़ियों ने गाकर गान
नयी तानों के तान वितान

* * *

(१८)

मधुप ने की जाकर गुंजार—

'अरी, सुन री, कलिका सुकुमार!
खोल दे अंध गंध के द्वार!

देख री, आया है मधुमास!
लिये नव - हर्ष, नया उल्लास!

सुरभि के कोष खोल री, खोल!
नयन के मोती जी भर रोल!

बिछा दे चरणों में सत्कार!'
मधुप ने की जाकर गुंजार—
'अरी, सुनरी, कलिका सुकुमार!'

* * *

मेरे उर का सखि मूक प्यार !

कलियों में जैसे वास मौन !
फूलों में जैसे हास मौन !
मधुऋतु में, कण कण के मन में,
रहता है ज्यों उल्लास मौन !

ज्यों मौन दबी रहती उर में,
पतझड़ के है मीठी पीड़ा !
ज्यों मौन शिशिर में धुँधियाली,
बन व्यथा किया करती क्रीड़ा !
ज्यों मौन सदा खाता रहता,
है लकड़ी को घुन का कीड़ा !

या मौन दिशाओं के उर में,
तूफ़ानों की जैसे हलचल !
या मौन सदा जलता जैसे,
सागर के उर में बड़वानल !
या मौन तड़पती रहती है,
ज्यों जलधर में चपला चंचल !

जीवन में आते रहते ज्यों !
सुख दुख हलचल के मौन ज्वार !

मेरे उर का सखि मूक प्यार !



उठा रे कवि, भावों की वीन,

ढाल स्वर आतुर, मदिर, नवीन !
और फिर होकर उनमें लीन,

छेड़ दे एक नयी झंकार !
शिथिलता छोड़, छेड़ दे तार !

स्वरों में हृदय, हृदय में प्यार,
प्यार में भर संचित उद्गार !

और उद्गारों में भर साध !
और फिर उनमें आश अगाध !

डाल दे, प्रिय-चरणों पर, दीन !
उठा रे कवि, भावों की वीन,

ढाल स्वर, आतुर, मदिर, नवीन !



उसे न तुम उपचार बताओ !
जीवन की कुछ जाँच सिखाओ !
यह जीवन, इसकी सब बातें,
हैं मालूम न उसे सुझाओ !

फूल कि जिसने देखा जीवन ;
फूल कि जिसने देखा उपवन ;
प्राची में जगतीं जब किरणें,
जगता जिसके मन में स्पन्दन ;

जो नव कलिकाओं में खेला,
चूमा जिसने शबनम का मुख !
झूमा संग समीरण के जो,
देख लिये जिसने सारे सुख !

लेकिन अब जो कुम्हलाया है ;
डाली से गिर मुरझाया है ;
जिसके धूल-भरे अंगों पर,
आगत का कोहरा छाया है ;

उपवन से जो दूर पड़ा है ;
थकित शिथिल है, चूर पड़ा है ;

उसे न उपवन में ले जाओ !
मत उसका उपहास कराओ !

सिले हुए सब घाव पड़े हैं।
वृथा न उनको आज उधेड़ो !

साथी आज मुझे मत छेड़ो !



मित्र, आशा के सहारे,
सोचता था लग सकेगी पार यह नौका किनारे !

किन्तु सागर की हिलोरें,
और मेघाछन्न अम्बर !
तेज़ चलता था प्रभंजन,
और नौका जीर्ण-जर्जर !
बुझ चुके थे आह, नन्हे दीप नभ के, मौन तारे !

हाथ में पतवार जिसके,
था न कुछ विश्वास उसका !
और यात्री बन चुका था,
मुद्दतों से दास उसका !
अब उसी पर था डुबोये और चाहे तो उबारे !

डूब जाना है, उदधि का
किन्तु शायद पार पाना !
और खो देना मुहब्बत का,
उसे मन में छिपाना !
फिर न कैसे छोड़ देता नाव आशा के सहारे !
मित्र आशा के सहारे !



आज मेरे आँसुओं में कौन सी स्मृति मुस्करायी ?

शिशिर ऋतु की धूप सा सखि,
खिल न पाया, मिट गया सुख !
और फिर काली घटा सा,
छा गया मन-प्राण पर दुख !

फिर न आशा भूल कर भी उस अमा में झिलमिलाई !

हाँ कभी जीवन के नभ में,
थे खिले दो चार तारे !
टिमटिमा कर, बादलों में,
मिट चुके पर आज सारे !

और धुँधियाली गहन-गम्भीर चारों ओर छाई !

पर, किसी परिचित पथिक के,
थरथराते गान का स्वर !
उन अपरिचित मार्गों में,
गूँजता रहता निरन्तर !

सुधि जहाँ जाकर, हज़ारों बार असफल लौट आई !
आज मेरे आँसुओं में कौन सी स्मृति मुस्कराई !



(२३)

किस स्नेह-परस ने छेड़ दिया,
निष्प्राण पड़ी सी वीणा को!
चिर श्रान्त, थकित चिर मौन और,
चिर-एकाकिनि, चिर-क्षीणा को!

जिसके ढीले से मौन तार,
झंकृत हो गाना भूल गए!
मन को मस्तक को, नस-नस को,
पल में सिहराना भूल गए!

जिसका मन शिथिल, पड़े जिसकी
वाणी पर थे चुप के ताले;
जिसके तन पर अगनित जाले,
दुख की मकड़ी ने बुन डाले;

किस स्नेह परस ने छेड़ दिया?
सब तार तने, झंकार उठी!
ज्यों अंधकार में रजनी के,
हो ज्योत्स्ना की दीवार उठी!

किस स्नेह-परस ने छेड़ दिया?
गानों के सागर फूट पड़े!
संगीत भरे नभ से तारे
तानों के अगनित टूट पड़े!

ध्वनि के खग उड़ उड़ फैल गए,
औ' दशों दिशाएँ जाग उठीं!
अम्बर की सोईं सी स्मृतियाँ
सुन कर यह अभिनव राग उठीं!

धरती ने ली फिर अँगड़ाई,
अपनी चिर-निद्रा तज डाली!
तन्द्रिल पलकों ने ज्योति नयी,
उस राग भरे क्षण में पा ली।

सागर सिहरा, काँपा, तड़पा,
छूने को नभ के छोर चला।
अम्बर लेकर मोती अपने,
मिलने को उसकी ओर चला।

उल्लास और अवसाद मिले
काया छाया में क्षीण हुई
स्मृति तन्मय होते होते सखि
विस्मृति में जाकर लीन हुई

× × ×

किसने फिर स्नेह-परस खींचा ?
फिर शंकित सी चुप है छाई !
वीणा की तृष्णा ने पूरी
थी अभी नहीं ली अँगड़ाई !



जल में उभारने वाली शक्ति न हो तो मानव एक बार ही सागर की तलैटी में जा डूबे ।

(१)

जिस राही से आशा थी,
विद्युत की गति पाने की!
इन सूरज चाँद सितारों,
से कहीं परे जाने की!

जो चला युगों से है पर
कुछ नहीं अधिक बढ़ पाया।
जिसकी कि प्रगति को पीछे,
मुड़ मुड़ आना ही भाया।

थे आदि काल से जिसके,
आगे विस्तृत, अगनित मग।
वह युगों युगों में रखता,
है शंकित सा कोई पग!



(२)

क्यों मानव की लज्जा से,
है तू इतना शर्माता?
इसके दुखों कष्टों पर,
क्यों जी तेरा भर आता?

यह गिर पड़ता है तो क्यों,
है सिर तेरा झुक जाता?
इसके दोषों त्रुटियों से,
है तू क्यों आँख चुराता?

क्या युगों युगों से इसका,
तू कर्ता नहीं कहाता?
ओ देव! नहीं अपने सा,
फिर क्यों तू इसे बनाता?



(२)

मिट जाती हैं स्रष्टा की,
जब जब रचनाएँ सुन्दर!
तब तब वह और बनाता,
उनसे भी अनुपम सत्वर!

कब जाना आहें भरना,
उसने असफल होने पर?
वह कब चुप हो बैठा है,
सिर को घुटनों में देकर?

फिर सखि, मैं भी क्यों छोड़ूँ,
नित नूतन जगत बनाना?
यह लाख बार बुझ जाए,
क्यों छोड़ूँ दीप जलाना?



(४)

आशाएँ जब धरती की,
फूटीं बन बन नव अंकुर;
जब सूना उर अम्बर का,
नव आशा से आया भर;

जब रुद्ध कंठ विहगों के,
नव नव तानों में बोले;
जब जड़ जंगम ने बदले,
हैं आज पुराने चोले;

तब मानस के मरुथल में,
क्यों आज न बाग लगा लूँ?
क्यों आज न स्वयं विधाता,
होने का गौरव पा लूँ?



(५)

युग युग से सुनता हूँ मैं,
हैं जग में वन्दीख़ाने!
घुट घुट कर मर जाते हैं,
जिन में अगनित दीवाने!

वे नहीं जानते नभ में,
खिलते हैं अगनित तारे!
कुल्हिया दाने पानी तक,
सीमित उनके सुख सारे!

क्या दिन न कभी आएगा,
जब तोड़ तीलियाँ सारी;
पर खोल हवा में वन्दी,
मारेंगे मुक्त उड़ारी?



(६)

आ इस जगती के ऊपर,
अभिनव संसार बसाएँ!
जिस में दुख इस दुनिया के,
हम को न सताने पाएँ!

ऐसा संसार कि जिस में,
दिन क्षण बन बन कर बीतें!
इस दुनिया के दुःखों को
सुभगे, हम जिस में जीतें!

उस अभिनव जग के अन्दर,
हम तुम हों दोनों प्राणी!
औ' भार सरीखा जीवन
बन जाए प्रेम-कहानी!



(७)

पा लेना है मंज़िल ज्यों,
पथ काट सुगम वा दुर्गम !
प्रतिबंध - पार कर सारे,
ज्यों पा लेना निज प्रियतम !

असफल, व' सफल बाज़ी को,
ज्यों खेल, बिसात बढ़ाना !
ऋण सभी चुका कर अपने,
सुख मीठा सा ज्यों पाना !

या दिन भर के श्रम से थक,
ज्यों रात पड़े सो जाना !
जब आय मौत है त्यों ही,
सखि, उसको गले लगाना !



(१०)

खंडहर में छिपे हुए हैं,
निर्माण न जाने कितने !
टूटी आशाओं में हैं,
अरमान न जाने कितने !

अवसानों की गोदी में,
सखि, हैं विहान नित पलते !
सूने मानस के अन्दर,
अगनित तूफ़ान मचलते !

जीवन के इस खंडहर पर,
आई है रात अँधेरी,
मत साथ छोड़ना साहस !
भर आएँ न आँखें मेरी !



(११)

वह दूर नदी के तट पर,
निज सूनेपन से हारा।
रह रह कर गा उठता है,
धुन में कोई बेचारा।

उसकी तानों पर उड़ उड़,
भूली स्मृतियाँ हैं आतीं!
जो उर में बीते युग की
चिर सोई याद जगातीं!

मैं सहसा जाग पड़ा हूँ,
अपनी सूनी शय्या पर!
उड़ गई नींद है मेरी,
पलकों के पटल उठा कर!

भीगी है रात अँधेरी,
ऊबे ऊबे से तारे !
सोए सब राही रस्ते,
सोए पशु पक्षी सारे !

गेहूँ में एक बटेरा
कर उठता है 'विट-विट-वीं'
या थकी हुई टिड्डी की
है थकी हुई सी चीं-चीं

वह करुण स्वरों में गाता,
खेतीहर हौले हौले !
बर्बाद कर गए जिसके,
खेतों को आँधी ओले !



(१३)

शीतकाल की प्रातः, नभ में,
धुँधियाली गहरी छाई है!
चाँद खड़ा सिमटा अम्बर में,
आभा उसकी कुम्हलाई है!

सहमा सहमा,
सिकुड़ा सिकुड़ा,
किरणों का सब जाल समेटे;
विटप झाड़ियाँ,
रस्ते राही,
धुँधियाली ने सारे भेंटे!

हिम ऐसी सर्दी के डर से,
अभी नहीं ऊषा ने झाँका।
अभी नहीं वैभव को अपने,
आँखें भर प्राची ने आँका!

चिड़ियों का संगीत मौन, खग
नीड़ों की गर्मी में सोए!
पंख पंख में,
चोंच चोंच में,
भावों में निज भाव सँजोए!

ओस बरसती
है वर्षा सी।
पांव फिसलते हैं रस्तों पर!
शीत धँसा आता है बरबस,
पक्की दीवारों के अन्दर!

लेकिन घर से निकल पड़ा है,
खेती-हारा,
जग का दाता।
जीर्ण शीर्ण चादर में अपने
ठिठुरे, झड़ते हाथ छिपाता!



(१४)

तुम कहते हो 'आज दुखी मैं' !

× × ×

आँख उठा कर देखो, जग में
कौन, नहीं जिसने दुख पाया ?
कौन, नहीं जिसके सपनों पर,
पड़ी अचानक दुख की छाया ?
संसृति के जीवन में, क्षण क्षण,
मानव ने है दुख को पाला।
धुआँ छिपा रहता है, लेकिन,
धधका करती है नित ज्वाला।

मुस्कानों के पीछे आँसू,
और हास के पीछे क्रन्दन।
ऊपर से पुलकित गातों के,
अन्तर में अन्तर्हित सिहरन।

× × ×

उधर किसी कोने में देखो,
पड़ी उपेक्षित पीड़ित नारी।
मौन रूप से, चुप चुप उसकी,
आँखों से आँसू हैं जारी।
सह सह कर दुख, उस ने
अपने संगी का संसार बसाया।
जूझ जूझ विपदाओं से, उस
को उसने इस योग्य बनाया।
उन्नत होकर, क्रूर जगत के,
कोषों से छीने धन वैभव।
नभ के तारे तोड़, असम्भव
को करदे क्षण भर में सम्भव।
लेकिन आज, कि जब उसने
सोचा था आई सुख की बारी,
उसका निर्मम संगी और
किसी देवी का बना पुजारी!

× × ×

और उधर बन्दीखाने की
निर्दय दीवारों के अन्दर,

क्षण भर सुस्ताने बैठा है,
बन्दी, कूट कूट कर पत्थर!
भूल गए वे लोग, कि जिनके
हित उसने बलिदान दिया था;
निज सुख का संसार, कि जिनके
हित उसे वीरान किया था;
भोली बीवी, भोले बच्चे, भोला
घर, जिनके हित छोड़ा;
जिनके हित दुनिया के सब
सुख वैभव से उसने मुँह मोड़ा;
जिनके दारुण दुख ने उसके
अणु अणु में थी आग लगाई,
आज उपेक्षा से कहते हैं
वही उसे—'पागल, सौदाई!'

× × ×

और उधर, टूटे से छप्पर
की निष्ठुर निर्मम धरती पर,
मानव का कंकाल पड़ा है,
ज्वर की पीड़ा से अति जर्जर।
जग को है अवकाश कहाँ
इतना जो वह उसके ढिग जाए?
किस को इतनी फ़ुर्सत है जो
जाकर उसको धीर बँधाए?
मौत, अँधेरी रात और उनमें
चिन्ता सी नन्ही बाला।

'यह जग तो असहायों को है
निज आखेट बनाने वाला।'
स्नेहहीन दीपक संगी, ज्यों
ज्यों प्रति पल बुझता जाता है,
गहन अँधेरा त्यों त्यों उसकी
आँखों में उमड़ा आता है।

× × ×

यह सब देखोगे तो कह दोगे—
'हे ईश्वर आज सुखी मैं,'
तुम कहते हो-'आज दुखी मैं' !



रात चाँदनी, मस्त हवा है,
नींद भरी सी है 'मर-मर'!
स्वप्न लोक के गीत सुनाता,
चाँदी सा झरना झर-झर।

मस्त बदलियाँ, जैसे नभ के
हों सुन्दर सपने सुकुमार!
चले जा रहे निर्मित करने,
सुख का एक नया संसार!

घने घने पेड़ों के नीचे,
लम्बे लम्बे साये हैं।
किरणों ने पत्तों से छन छन,
जिन पर जाल बिछाए हैं।

तुहिन कणों से लदे हुए हैं,
दूर्वा के मृदु दल के दल।
नन्हे नन्हे चाँद हज़ारों,
करते हैं झलमल-झलमल।

हारे थके किसी जीवन में,
जैसे सपने आते हैं।
इसी तरह छाया में जुगनूँ,
चमक चमक छिप जाते हैं।

भीनी भीनी सौरभ से है,
भारी भारी, मस्त हवा।
दिन भर के झुलसे दिल की
है ठंडी ठंडी यही दवा।

घायल दिल पर शीतल, कोमल,
फाहे रख रख देती है।
पीड़ा युगों युगों की क्षण में
दयावान हर लेती है!

धरती पर सोई हरियाली,
नभ पर हैं तारे सोए।
'निंदिया पुर' के जादू जग में,
सारे के सारे खोए!

राहों के अन्तर में सोई,
स्मृति दिन के कोलाहल की।
गूँज दिशाओं में निद्रित है,
अभी अभी बीते कल की।

दिन भर मुस्कानें वितरण कर
थके हुए से पुष्प अधर,
निद्रा में सोए हैं लेकर
स्निग्ध चाँदनी की चादर!

पर अब भी सुन्दर स्मृतियाँ
दिन की, उनमें मधु भरती हैं।
हारे थके किसी राही का
जो जीवन-श्रम हरती हैं!

कोमल किसलय दल पर जाकर
मद के डाकू सोए हैं?
किसे ख़बर में ने इन रातों
कितने सपने खोए हैं?



"लेकिन इस दुनिया में उलफ़त तुलती है धन
के तोलों में"

(१)

ओ नीम !

ओ नीम ! कि तेरे अन्तर में,
हैं छिपी हुई स्मृतियाँ बीती।
ओ नीम ! कि तेरी छाया में,
बाज़ी हारी मैंने जीती।
ओ नीम ! कि तेरे संग कई,
काटीं मैंने घड़ियाँ रीती।

ओ नीम—

तेरे सायों में हँसा बहुत,
मैं कई बार हूँ रोया भी।
तेरी छाया में एक जगत,
पाया भी मैंने खोया भी।
सुख के सपने अगनित सींचे,
औ' बीज दुखों का बोया भी !

ओ नीम—

हैं याद तुझे अब या कि नहीं,
घनघोर घटाएँ सावन की;
वे गाने, वे झूले, पैंगें,
वे मस्त हवाएँ सावन की
वह धूप कभी, वर्षा व' कभी
दिलचस्प अदाएँ सावन की

ओ नीम—

मोरों की अविरल झंकारें,
कोयल की कू कू मस्तानी।
पत्तों की मर मर पर उठती,
वह वंशी की लय दीवानी।
जो सुनने वाली से कहती,
वह प्रेम कहानी अनजानी।

ओ नीम—

सावन के, याद नहीं तुझको,
उन्माद भरे दिन रातें वे!
रे, घड़ियों सी बहने वाली,
कुछ मीठी मादक बातें वे!
अलबेले, अनजाने जादू,
औ' भोली भाली घातें वे!

ओ नीम—

वे जाम छलकते आँखों में,
वे नशे हवाओं में उड़ते!
उलफ़त के अम्बर में, मन के
खग उड़ते, उड़ उड़ कर मुड़ते;
संध्या के धुँधले सायों में,
जब तार दिलों के थे जुड़ते।

ओ नीम—

क्या इतने में ही भूल गया?
उस मेरी प्रेम-कहानी को!
उस रूप शिखा पर जल जल कर,
मिटती, कम्बख़्त जवानी को!
उर के नीरव निश्वासों को,
आँखों के चुप चुप पानी को!

ओ नीम—

× × × ×

आ, याद दिलादूँ जब लेकर
रेवड़ चरवाहे आते थे ;
टेढ़े, कच्चे रस्तों पर चल,
चारों दिशि धूल उड़ाते थे ;
बादल से गहरे, मटमैले
जब गाँवों पर छा जाते थे ;

ओ नीम—

हर घर में 'हीर[1]' खड़ी कोई,
जब बाट जोहती 'रांझन[2]' की;
घर के कामों में मग्न हुई,
सब याद भुला कर तिंझन[3] की;
गायों बछड़ों से कह देती,
जब व्यथा सभी अपने मन की ;

ओ नीम—

सीधे सादे से खेलों में,
जब सब किशोर जुट जाते थे;
जीवन की मधु-ऋतु के वासी,
जब गीत प्रीति के गाते थे ;
'रांझे' के गान हवाओं में,
जब बिखर बिखर थर्राते थे ;

ओ नीम—

१, २—पंजाब के अमर प्रेमी ।
३—देहात में इकट्ठे मिल कर जब युवतियां चरखा कातती हैं, उसे तिंझन कहते हैं ।

'माही' के 'वालो' के गाने
गूँजा करते जब कानों में;
जब तरल तराने बहते थे
वंशी की मीठी तानों में;
दिल खिंचे चले जाते थे जब,
दो अलगोज़ों के गानों में;

ओ नीम—

जब वृद्ध सुनाते थे अपने,
बीते जीवन के अफ़साने;
गलियों में अल्हड़ यौवन के
पीछे फिरते थे दीवाने;
ज्यों दीप-शिखा पर शाम पड़े
मर मिटते पागल परवाने!

ओ नीम—

ममता की मारी गायों के,
बाड़ों से जब आते थे स्वर;
औ' मुर्ग़ अज़ानें देते थे,
जब साथ मुअज़्ज़न के मिल कर,
पानी लेने को खाले[1] पर,
वह जाती थी लेकर गागर।

ओ नीम—

× × × ×

१—नदी

मैं एक दिवस ऐसे ही में,
यह अपना हृदय गँवा बैठा।
आँखों ही आँखों में अपना,
सब दिल का भेद बता बैठा।
औ' बैठे-ठाले अनजाने,
इस दिल को रोग लगा बैठा।

ओ नीम—

× × × ×

संध्या थी, भरती थी पानी,
वह यौवन के हाथों हारी।
मुझ को था ऐसा भास रहा—
है नाच रही दुनिया सारी।
औ' बिछ बिछ जाती है उसके,
चरणों में धरती बेचारी।

ओ नीम—

उसकी तरुणाई के चर्चे,
ये बेलों में, वीरानों में।
नव-वय के युवकों के अन्दर,
यौवन माते दीवानों में।
उसकी दो बातों की हसरत
थी कितने ही अरमानों में।

ओ नीम—

नयनों में उसके, यौवन की,
स्वर्णिम आभा इठलाई थी।
ओंठों ने उसके फूलों की
शायद मुस्कान चुराई थी।
सूरज के गालों पर भी तो,
उसके मुख की अरुणाई थी।

ओ नीम—

उसकी सुन्दरता पी पी कर,
सूरज सोता सा जाता था।
कुछ उसके स्वर्णिम चेहरे को,
जाने होता सा जाता था!
औ' मैं, अनजाने देशों में,
प्रति क्षण खोता सा जाता था!

ओ नीम—

कुछ नाम भला सा था, पर सब
उसको 'शम्मी' ही कहते थे।
विष और अमृत दोनों ही तो,
उसकी वाणी में रहते थे।
औ' उसकी आँखों में अगनित,
मदिरा के सागर बहते थे।

ओ नीम—

× × × ×

मैं एक दिवस ऐसे ही में,
यह अपना हृदय गँवा बैठा।
आँखों ही आँखों में अपना,
सब दिल का भेद बता बैठा।
औ' बैठे-ठाले अनजाने,
इस दिल को रोग लगा बैठा।

ओ नीम—

× × × ×

संध्या थी, भरती थी पानी,
वह यौवन के हाथों हारी।
मुझ को था ऐसा भास रहा—
है नाच रही दुनिया सारी।
औ' बिछ बिछ जाती है उसके,
चरणों में धरती बेचारी।

ओ नीम—

उसकी तरुणाई के चर्चे,
ये बेलों में, वीरानों में।
नव-वय के युवकों के अन्दर,
यौवन माते दीवानों में।
उसकी दो बातों की हसरत
थी कितने ही अरमानों में।

ओ नीम—

नयनों में उसके, यौवन की,
स्वर्णिम आभा इठलाई थी।
ओंठों ने उसके फूलों की
शायद मुस्कान चुराई थी।
सूरज के गालों पर भी तो,
उसके मुख की अरुणाई थी।

ओ नीम—

उसकी सुन्दरता पी पी कर,
सूरज सोता सा जाता था।
कुछ उसके स्वर्णिम चेहरे को,
जाने होता सा जाता था!
औ' मैं, अनजाने देशों में,
प्रति क्षण खोता सा जाता था!

ओ नीम—

कुछ नाम भला सा था, पर सब
उसको 'शम्मी' ही कहते थे।
विष और अमृत दोनों ही तो,
उसकी वाणी में रहते थे।
औ' उसकी आँखों में अगनित,
मदिरा के सागर बहते थे।

ओ नीम—

× × × ×

मैं चाह रहा था—पी जाऊँ,
उस मदिरा की अन्तिम तलछट!
जिस मदिरा की मादकता में,
थे अगनित सपनों के जमघट!
थी पहली मस्त जवानी ने,
ली जिसके अंगों में करवट।

ओ नीम—

× × × ×

इस तपते दिल में एक दिवस,
फिर उसने ठंडक डाली थी।
अपनी खोई दुनिया मैंने,
उसकी आँखों में पा ली थी।
औ' एक नयी आशा उर ने,
कुछ अपने आप बना ली थी।

ओ नीम—

दिन होते हैं, जब आशाएँ,
अति सुन्दर जाल बिछाती हैं।
अस्तित्व नहीं जिनका कोई,
वे अनुपम बाग़ खिलाती हैं।
सतरंगे इन्द्र धनुष जैसे,
पट आँखों में लहराती हैं।

ओ नीम—

दिन होते हैं मन का खग जब ,
इन भूलों में ही बसता है ।
क्षण भर हमदर्दी पाने को ,
मूरख बे-तरह तरसता है ।
जीवन भर रोता है उसको,
जिस एक घड़ी भर हँसता है ।

ओ नीम—

उस एक घड़ी में ही मैंने ,
अगनित अरमान सजाए थे ।
सोने से सुन्दर सपनों में,
चाँदी से नगर बसाए थे ।
आकाश न जिन तक पहुँच सके,
ऐसे प्रासाद बनाए थे ।

ओ नीम—

× × × ×

इस तेरी छिदरी छाया ने ,
दो बँधे हुए मन देखे हैं ।
गत-आगत जिनका भाग बने ,
कुछ ऐसे भी क्षण देखे हैं ।
जिनके बदले में ठुकरा दूँ ,
मैं शत-शत जीवन, देखे हैं ।

ओ नीम—

× × × ×

लेकिन इस दुनिया में उलफ़त,
तुलती है धन के तोलों में।
विष का सागर बल खाता है,
इसके दो मीठे बोलों में।
औ' शम्मी जैसी जाती हैं,
सोने के सुन्दर डोलों में।

ओ नीम—

उनके, जिनके दरवाज़ों पर,
सौ बैल जुगाली करते हैं।
दूध और दही से भोर हुए,
नित जिनके मटके भरते हैं।
औ' जिनकी सत्ता के आगे,
हम जैसे निर्धन डरते हैं।

ओ नीम—

भरपूर कोठियाँ हैं जिनकी,
ताज़ा औ' मीठे दानों से।
धन बहता रहता है निशि दिन
जिनके पूरित खलिहानों से।
रखवाले ताका करते हैं,
जिनके मज़बूत मचानों से।

ओ नीम—

रे, उनके, जो हैं मीलों तक,
स्वामी उर्वरा ज़मीनों के।
जो सुन्दर नहीं मगर फिर भी,
पाते हैं साथ हसीनों के
जिनके महलों तक जाने में,
पर जलते हैं हम दीनों के।

ओ नीम—

× × × ×

मैं देश विदेश फिरा, घूमा,
घायल दिल के वहलाने को।
दो फाहे इसके घावों पर,
दुनिया में कहीं लगाने को।
औ' शान्ति किसी कोने में जा,
विस्तीर्ण जगत के पाने को।

ओ नीम—

पर शान्ति नहीं है चीज़, कि जो
बाहर ढूँढ़े से मिल जाए।
पा कर पीड़ाओं का पानी,
कैसे उर-अम्बुज खिल जाए।
क्या जान सकेगा वह, न कभी
पहलू से जिसका दिल जाए।

ओ नीम—

× × × ×

आशाएँ कितनी संचित कीं,
फिर उनको स्वयं बखेर दिया।
प्रासाद बनाए जो मैंने,
कर उनको खुद ही ढेर दिया।
जो प्रेम जगत से पाया था,
चुप चाप उसे वह फेर दिया।

ओ नीम—

घायल उर लेकर गया, मगर
नासूर लिये अब आया हूँ।
जो दिल का दर्द बटा देता,
दिल खोज नहीं वह पाया हूँ।
इन रिसते घावों को लेकर,
अब तेरे द्वारे आया हूँ।

ओ नीम—

अब इन तेरी छायाओं में,
अपना गत जीवन ढूँढूँगा।
दिन स्वप्न बने हैं जो उनका,
स्मृतियों में स्पन्दन ढूँढूँगा।
जो जग ने छीन लिया मुझसे,
मैं अपना वह मन ढूँढूँगा।

ओ नीम—

ओ नीम बता दे बस इतना—
वह यहाँ कभी फिर आई भी ?
औ' दिल की कोई कथा तुझको
है उसने कभी सुनाई भी ?
औ' आह कलेजे में बरबस,
है उसने कभी दबाई भी ?

ओ नीम—



प्रीत नगर
नवम्बर १७३९